1

परमेश्वर, मनुष्यजाति व पाप

(उत्पत्ति 1-3)

उत्पत्ति के पहले तीन अध्याय शेष बाइबल को समझने में हमारे लिए आधार हैं। नाम ''उत्पत्ति'' का अर्थ है ''आरम्भ,'' और उत्पत्ति की पुस्तक हमें हर उस चीज़ के आरम्भ के बारे में बताती है, जिसका अस्तित्व है। चाहे वह सृजित संसार हो, जीवन और यहां तक कि पाप और मृत्यु। पवित्र शास्त्र को हमारे समझने के लिए ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि उत्पत्ति की पुस्तक के बाद बाइबल के प्रत्येक लेख में इसे माना जाता है। इसलिए उत्पत्ति 1-3 सचमुच में मुख्य वचन है।

परमेश्वर

यदि कोई पूछे कि ''बाइबल किस बारे में है?'' तो हम एक शब्द में इसका सही उत्तर दे सकते हैं ''परमेश्वर'' के बारे में। उत्पत्ति की पहली आयत से लेकर प्रकाशितवाक्य के अन्तिम अध्याय तक, यह परमेश्वर के विषय में ही है। इसे विस्तार दें तो बाइबल मनुष्यजाति की कहानी भी बताती है, विशेषकर पाप के साथ हमारे संघर्ष और छुटकारे के लिए हमारी आवश्यकता के विषय में। हर चीज़ का केन्द्र बिन्दु हम नहीं बल्कि परमेश्वर है।

''आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की'' (उत्पत्ति 1:1)। यह महत्वपूर्ण है कि बाइबल परमेश्वर के अस्तित्व को *मानने* से आरम्भ होती है। न कि उसके अस्तित्व पर बहस करने या उस पर चर्चा करने के साथ कि ऐसा क्यों है? परमेश्वर का अस्तित्व अपने आप में प्रमाण है। यदि सृष्टि है, तो सृष्टिकर्त्ता भी होना आवश्यक है। जब हम बड़ी सुंदरता से ज़िल्दबन्द की गई और सचित्र पुस्तक को देखते हैं तो हम कभी यह नहीं मान लेते कि यह प्रिंटिंग प्रैस, सियाही की फैक्टरी या जिल्द-साज में एक साथ होने वाले विस्फोटों से बनी होगी, बल्कि हम तर्कसंगत रूप से मानते हैं कि एक या दो जनों ने इस पुस्तक को लिखा होगा, इसे सचित्र बनाया होगा।, इसे छापा होगा और इसे पुस्तक के रूप में एकत्र किया होगा। तर्कसंगत निष्कर्ष केवल यही है। इतनी जटिलताओं से भरे सृजित संसार को देखकर इस बात के अलावा कि किसी ने इसे सृजा है कोई और बात मान लेना बिल्कुल ही तर्कहीन होगा।

एक प्रश्न जिसका उत्तर सही ढंग से संदेहवादी कभी नहीं दे पाए वह यह है कि ''यदि परमेश्वर नहीं है, तो फिर सब चीज़ें कहां से आईं?'' किसी ज़माने में विस्फोटों के होने और गैसों के मिल जाने की बात काम नहीं करेगी, क्योंकि इन घटनाओं के घटने के लिए आवश्यक ''कच्चे माल'' के अस्तित्व के विवरण के लिए यह काफ़ी नहीं है। शून्य से शून्य निकलता है, सो जो कुछ हम अपने आस-पास देखते हैं उस सब का ''पहला कारण'' होना आवश्यक है।

भजन संहिता 14:1 कहता है कि केवल मूर्ख ही इस स्पष्ट सच्चाई से इनकार करेगा कि

परमेश्वर है। ऐसा हो नहीं सकता कि मूर्ख व्यक्ति किसी प्रकार उत्पत्ति की बात को सुने, इस कारण बाइबल उनके साथ बहस करने या परमेश्वर के अस्तित्व को ''प्रमाणित'' करने की कोशिश करते हुए आरम्भ नहीं होती।

उत्पत्ति 1:1 संसार के आरम्भ के बारे में प्राचीन लोगों में पाए जाने वाले आम विश्वास के एकदम उलट है। वस्तुत: सभी प्राचीन लोग कई ''देवताओं'' में विश्वास रखते थे, जिन्होंने अलग-अलग प्रकार से संसार को बनाने में योगदान दिया। कुछ लोग देवताओं में होने वाली वैश्विक लड़ाइयों की बात बताते थे, जो किसी न किसी कारण पदार्थ के बनने का कारण बने जो अन्त में वह संसार बन गया, जिसे आप और मैं जानते हैं।

दूसरी ओर उत्पत्ति की पुस्तक कहती है कि परमेश्वर एक है, और जो कुछ भी अस्तित्व में है उसका सृष्टिकर्त्ता केवल वही है। ध्यान दें कि उत्पत्ति 1 और 2 परमेश्वर को उस सब के स्रोत के रूप में कैसे पेश करते हैं जो है। उदाहरण के लिए, 1:1-19 सारे पदार्थ की सृष्टि और वनस्पति के जीवन के आरम्भ की सृष्टि के जीवन का वर्णन करता है। 1:20-25 में हम पशु जीवन के विभिन्न रूपों की सृष्टि के विषय में पढ़ते हैं। अन्त में सृष्टि का विवरण मानव जीवन के आरम्भ में उच्चतम उत्कर्ष प्राप्त करता है (1:26-30; 2:4-25)। संदेश स्पष्ट है कि परमेश्वर से अलग होकर *किसी का* भी अस्तित्व नहीं है!

इसी प्रकार सृष्टि के विवरण में परमेश्वर की प्रकृति की विशेषताएं स्पष्ट हैं। इन विशेषताओं का वर्णन अध्यायों में नहीं किया गया; बल्कि उन्हें *दिखाया गया* है। परमेश्वर का व्यवहार उसके द्वारा प्रकट किया गया है जो वह *करता है*। बाइबल में आगे, यीशु ने बताया कि व्यक्ति का व्यवहार उसके द्वारा किए गए कामों के द्वारा जाना जा सकता है (मत्ती 7:15-20)। परमेश्वर पर भी यही बात लागू होती है।

सामर्थ

उदाहरण के लिए, सृष्टि के विवरण से हमें परमेश्वर की *सामर्थ* का पता चलता है। वह किसी भी चीज़ को अस्तित्व में लाने के लिए ''बोल'' कर ही ला सकता है। हमारे विपरीत परमेश्वर के शब्दों का बहुत ही प्रभाव है; यदि वह कुछ कहे तो वह हो जाता है। भजन संहिता 33:6 में इस सच्चाई की गूंज सुनाई देती है: ''आकाशमण्डल यहोवा के वचन से, और उसके तारे गण उसके मुंह की श्वास से बने।'' इसी प्रकार से यशायाह 55:10, 11,

> जिस प्रकार से वर्षा और हिम आकाश से गिरते हैं
> और वहां यों ही लौट नहीं जाते,
> वरन भूमि पर पड़कर उपज उपजाते हैं
> जिस से बोलने वाले को बीज और खाने वाले को रोटी मिलती है,
> उसी प्रकार से मेरा वचन भी होगा
> जो मेरे मुख से निकलता है;
> वह व्यर्थ ठहरकर मेरे पास न लौटेगा,
> परन्तु, जो मेरी इच्छा है उसे वह पूरा करेगा,
> और जिस काम के लिए मैं ने उसको भेजा है, उसे वह सुफल करेगा।

परमेश्वर के बारे में हमें यह पता चल जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जब परमेश्वर बात करता है, तो हमें सुनना आवश्यक होता है!

समझ

उत्पत्ति 1-3 से हमें परमेश्वर की *समझ* के बारे में भी पता चलता है। अध्याय 1 को ध्यान से पढ़ते हुए हमारा ध्यान सृष्टि के सावधानीपूर्वक डिज़ाइन और योजनाबद्ध होने पर जाता है। उत्पत्ति 1:2 दिखाता है कि परमेश्वर ने अव्यवस्था में से व्यवस्था बनाई। फिर उसने निर्जीव तत्व को, वनस्पति जीवन, पशु जीवन और अन्त में मानव जीवन की सृष्टि की। सृष्टि ''संयोग से'' या ''दुर्घटना से'' नहीं बल्कि तर्कसंगत और व्यवस्थित ढंग से बनी। संसार का डिजाइन जिसमें हम रहते हैं डिज़ाइन बनाने वाले की बुद्धि की गवाही देता है। इसके विपरीत संसार को दुर्घटना के रूप में बताने के सभी प्रयास मूर्खतापूर्ण लगते हैं!

बहुत साल पहले, टैक्सस में रहते हुए मुझे मैक्सिको की ओर जाती सम्राट तितलियों की वार्षिक उड़ान देखने का अवसर मिला था। इसी कारण जिसे कोई बता नहीं सकता (चाहे बड़े बुद्धि जीवियों ने कोशिश की है), सम्राट तितलियां उत्तरी अमेरिका के सारे क्षेत्र में से इकट्ठी होकर मैक्सिको के किसी इलाके में जाती हैं, जो केवल कुछ एकड़ चौड़ा है। उनमें से लाखों तितलियों को ऐसे चलते हुए देखा जा सकता है, जैसे उन्हें पता न हो कि वे कहां जा रही हैं, तौभी अन्त में वे मैक्सिको में एक ही जगह जाकर रुकती हैं। इस बात पर आश्चर्य होना आवश्यक है कि यदि परमेश्वर नहीं है तो ऐसा क्यों होता है। यह कैसे होता है कि तितलियों को ''पता है'' कि कब इकट्ठे होना है और कहां जाना है? क्या हम किसी ''आदम जमाने की तितली'' की कल्पना करें जिसने सबसे पहले जाकर वापस आकर किसी न किसी प्रकार दूसरों को इसके बारे में बताया? क्या वे हर साल एक ही जगह में दुर्घटना से पहुंचती हैं? यह मानने के लिए कि परमेश्वर ने न केवल इन नाज़ुक प्राणियों की सृष्टि की, बल्कि उसने उन्हें इस वार्षिक काम को करने के लिए ''प्रोग्राम'' भी किया, और कितना तर्क चाहिए। ऐसा सृष्टिकर्त्ता स्पष्ट रूप से समझ से परे की बात है।

भलाई

ये अध्याय परमेश्वर की *भलाई* की भी गवाही देते हैं। अध्याय 1 के अन्त में हमें बताया गया है कि ''परमेश्वर ने जो कुछ बनाया था, सब को देखा, तो क्या देखा, कि वह बहुत ही अच्छा है'' (1:31क)। परमेश्वर की भलाई की झलक हर चीज़ में मिलती है जिसे उसने बनाया। यह कितनी अद्‌भुत खबर है कि यह हमारे लिए है! हमें चकित होने की आवश्यकता नहीं है कि परमेश्वर भला है या बुरा, यदि वह हम से प्रेम करता है या घृणा करता है, यदि उसकी मंशा हमें आशीष देने की या अपने संसार से बदला लेने की है।

बाइबल के आरम्भ से ही हम परमेश्वर की तस्वीर देखने लगते हैं जो बाद में ''देह रूप'' ले लेती है। पूरी बाइबल में हम देखते हैं कि इस प्रकार से वही परमेश्वर उसी संसार को जिसे उसने बनाया सृष्टि करना, बनाए रखना और आशीष देना जारी रखता है।

मनुष्यजाति

उत्पत्ति की पुस्तक में मनुष्यों की सृष्टि की चर्चा अपने आप ही विषय नहीं बनती, बल्कि सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के सम्बन्ध में बनती है। ''मनुष्य'' (इब्रानी, *adam*) जिसमें पुरुष और स्त्री दोनों हैं का पहली बार उल्लेख 1:26क में मिलता है, जहां परमेश्वर ने कहा, ''हम मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार अपनी समानता में बनाएं।''

मनुष्यों के इस पहले हवाले में सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि परमेश्वर की सृष्टि में केवल मनुष्य ही है जिसके ''[उसके] स्वरूप के अनुसार'' और ''[उसकी] समानता में'' बनाए जाने की बात कही गई है। ऐसा नहीं हो सकता कि मनुष्य शारीरिक रूप में परमेश्वर की समानता में हो, तो फिर इस बात का क्या अर्थ है? ''परमेश्वर के स्वरूप के अनुसार'' होने का अर्थ समझ, सृजनात्मकता और प्रेम करने की क्षमता जैसे मामलों में परमेश्वर के अपने स्वभाव के जैसे होना है। यह स्पष्ट रूप से उस आधुनिक विचार के विपरीत है कि लोग ''उच्च पशु'' ही हैं जो विकासवादी पैमाने के सबसे ऊपर हैं (एक खोजी हाल ही में इससे भी आगे निकल गया, उसने सुझाव दिया कि चिम्पैन्ज़ियों [वनमानुष] को मनुष्यों के साथ *होमोसेपियन्स* की श्रेणी में रखा जाना चाहिए।) आयत 26 का अन्तिम भाग हमारे परमेश्वर के स्वरूप में बनाए जाने की अवधारणा की व्याख्या करने में भी सहायक है: ''और वे समुद्र की मछलियों और आकाश के पक्षियों, और घरेलू पशुओं, और सारी पृथ्वी पर, और सब रेंगने वाले जन्तुओं पर जो पृथ्वी पर रेंगते हैं, अधिकार रखें।'' स्पष्टतया परमेश्वर के स्वरूप में बनाए जाना पृथ्वी सहित इसमें पाए जाने वाली वनस्पति और पशु जीवन सहित शेष सृष्टि के ऊपर उप-अधिकारी होना है। 28 से 30 आयतों में इस पर और ज़ोर दिया गया है जहां पुरुष और स्त्री को परमेश्वर द्वारा ''पृथ्वी को भर देने, और उसे अपने वश में कर लेने'' और शेष सृष्टि को अपने अधिकार में करने को कहा गया। परमेश्वर की सृष्टि के ऊपर मनुष्य को पूर्ण अधिकार नहीं है, पर वह केवल परमेश्वर का उप-अधिकारी है। हमें सृष्टि के ऊपर अधिकार भी है और इसकी जिम्मेदारी भी दी गई है। हमें यह इस्तेमाल करने के लिए दी गई है न कि इसका दुरुपयोग करने के लिए परमेश्वर के स्वरूप में बनाए जाकर मनुष्यजाति को स्पष्ट रूप में अन्य सभी जीवों से अलग श्रेणी में रखा गया है। यह सच्चाई ''प्रकृति की पूजा'' जैसी बातों को भी नकार देती है, जो आज प्रसिद्ध हो रही है (चाहे वास्तव में वह बहुत पुरानी है)। पृथ्वी और आकाश हमारे ''माता'' और ''पिता'' नहीं हैं। वे परमेश्वर की सृष्टि का भाग हैं जिनके ऊपर परमेश्वर की ओर से काम करते हुए हमें अधिकार दिया गया है।

उत्पत्ति 2 में देखने पर हमें मनुष्य होने की ''विशेष बात'' का एक और आयाम मिलता है। मनुष्य को सृष्टिकर्त्ता के साथ सीधे, यानी व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण बनाया गया: ''और यहोवा परमेश्वर ने आदम को भूमि की मिट्टी से रचा और उसके नथनों में जीवन का श्वास फूंक दिया; और आदम जीवता प्राणी बन गया'' (उत्पत्ति 2:7)। किसी अन्य जीव को इतनी नज़दीकी से नहीं बनाया गया, क्योंकि शेष सभी को अस्तित्व में आने के लिए कहकर ही बनाया गया।

इसी प्रकार मनुष्य का जीवन सीधे परमेश्वर के अपने श्वास से मिलता है। उसी प्रकार से सृष्टि का विवरण इस बात पर ज़ोर देता है कि मनुष्यों को एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध का आनन्द लेने के अलावा परमेश्वर के साथ सम्बन्ध का आनन्द लेने के लिए बनाया गया है। परमेश्वर की

अन्य सृष्टि के साथ ऐसा नहीं है। यह तथ्य कि परमेश्वर ने आज्ञा जारी की और पुरुष और स्त्री के लिए सीमाएं ठहराईं। 2:7 में बताए गए सम्बन्ध की विलक्षणता का और सुझाव देता है। परमेश्वर के साथ सम्बन्ध में रहने के लिए, उन्हें उस सम्बन्ध की शर्तों का पता होना आवश्यक है। अथेने नामक नगर में अपने प्रसिद्ध उपदेश में, पौलुस ने परमेश्वर/मनुष्यजाति सम्बन्ध पर यह कहा:

> जिस परमेश्वर ने पृथ्वी और उस की सब वस्तुओं को बनाया, वह स्वर्ग और पृथ्वी का स्वामी होकर हाथ के बनाए हुए मन्दिरों में नहीं रहता। न किसी वस्तु का प्रयोजन रखकर मनुष्यों के हाथों की सेवा लेता है, क्योंकि वह तो आप ही सब को जीवन और श्वास और सब कुछ देता है। उस ने एक ही मूल से मनुष्यों की सब जातियां सारी पृथ्वी पर रहने के लिए बनाई हैं; और उनके ठहराए हुए समय, और निवास के सिवानों को इसलिए बान्धा है। *कि वे परमेश्वर को ढूंढें, कदाचित उसे टटोलकर पाएं* ... (प्रेरितों 17:24-27)।

पौलुस ने उसी बात की पुष्टि की, जिसका सुझाव उत्पत्ति की पुस्तक देती है: कि हमें अपने सृष्टिकर्त्ता के साथ सम्बन्ध रखने के लिए बनाया गया था। जब तक वह सम्बन्ध नहीं बनता तब तक हमें जीवन की सच्ची भरपूरी नहीं मिल सकती। बाइबल मुख्य रूप से यही बताती है।

परमेश्वर ने हमें एक दूसरे के साथ सम्बन्ध रखने के लिए भी बनाया। उत्पत्ति 2:18 में परमेश्वर ने घोषणा की, ''आदम का अकेला रहना अच्छा नहीं।'' आदमी को केवल साथी नहीं बल्कि वह चाहिए जो उससे ''मेल खाता'' हो, यानी वह जो उसके अपने स्वभाव से मेल खाता हो और जिससे वह अपने जीवन को बांट सके। इसलिए परमेश्वर ने उसके लिए एक ''सहायक'' बनाई। (''सहायक'' शब्द किसी प्रकार किसी चीज़ को नीचा दिखाने के लिए नहीं है, क्योंकि यह वही शब्द है जिसका इस्तेमाल और कहीं परमेश्वर का वर्णन हमारे ''सहायक'' के लिए किया गया है; भजन संहिता 30:10.) 19 से 25 आयतें स्त्री की सृष्टि और परमेश्वर के उस पुरुष के पास लाने का वर्णन करती हैं। आदम ने पहले ही परमेश्वर द्वारा बनाए गए पशु जीवन की समीक्षा कर ली थी और उसने हर जीव का नाम रख दिया था, जो ऐसी प्रक्रिया थी कि वह बेशक उसके अकेलेपन को दिखाती थी, क्योंकि उसके जैसा कोई नहीं था। जब परमेश्वर स्त्री को उसके पास लाया, तो वह आनन्द से पुकार उठा, ''यह मेरी हड्डियों में की हड्डी और मेरे मांस में का मांस है: सो इसका नाम नारी होगा, क्योंकि यह नर में से निकाली गई है'' (2:23)। अब उसे अहसास हुआ कि उसके जैसा उसका कोई साथी है, जिसके साथ वह गहराई से अपने जीवन को बांट सकता है।

उत्पत्ति 1-3 यह भी दिखाता है कि परमेश्वर हमारा सृष्टिकर्त्ता है, इसलिए उसे हमें आज्ञा देने और हमारा न्याय करने (यानी हमें ज़िम्मेदार ठहराने) का अधिकार है कि हम उसकी आज्ञाओं को किस प्रकार मानें या उनकी उपेक्षा करें। उत्पत्ति 2:15-17 में यह सबसे स्पष्ट है:

> जब यहोवा परमेश्वर ने आदम को लेकर अदन की वाटिका में रख दिया, कि वह उस में काम करे और उसकी रक्षा करे, तब यहोवा परमेश्वर ने आदम को यह आज्ञा दी, कि तू वाटिका के सब वृक्षों का फल बिना खटके खा सकता है: पर भले या बुरे के ज्ञान का जो वृक्ष है, उसका फल तू कभी न खाना: क्योंकि जिस दिन तू उसका फल खाए उसी दिन अवश्य मर जाएगा।

इस वचन में आज्ञा और जवाबदेही के दो तत्व हैं। परमेश्वर हमें केवल ''सुझाव'' नहीं देता। वह हमारा ''चिकित्सक'' नहीं है जिसका काम हमें अपनी मर्ज़ी पर छोड़कर जैसे कुछ हो सके करने देना है। वह हमारा बनाने वाला है, और हमें उसकी आज्ञाओं के लिए अपनी प्रतिक्रिया के लिए उसे उत्तर देना आवश्यक है।

विडम्बना यह है कि उसके स्वरूप में बनाए जाने वाले परमेश्वर के सांसारिक जीवों में न केवल हम अकेले हैं, बल्कि केवल हम ही वे जीव हैं जिन्हें उसने अपने विरोध में विद्रोह करने के योग्य बनाया है। यह विश्वव्यापी मानवीय समस्या यानी पाप का कारण बनता है।

पाप

परमेश्वर ने आज्ञा और चेतावनी के माध्यम से पाप को रोकने की कोशिश की: ''... उसका फल तू कभी न खाना ... तू ... अवश्य मर जाएगा।'' परमेश्वर को बार-बार न्याय करने वाले और जान-बूझकर दोषी ठहराने वाले के रूप में बार-बार दिखाया जाता है, परन्तु पूरे धर्मशास्त्र में हम पाते हैं कि वह न्याय करने से पहले चेतावनी देता है। इस्राएलियों का न्याय करने से पूर्व, परमेश्वर ने उन्हें कई सालों तक नबियों के द्वारा चेतावनी दी! वह ''दुष्ट के मरने से कुछ भी प्रसन्न नहीं होता'' (यहेजकेल 33:11)। इसलिए पाप को रोकने के लिए जो कुछ भी वह कर सकता था उसने किया। वास्तव में पवित्र शास्त्र के द्वारा हमें चेतावनी देने का परमेश्वर का काम अभी भी पूरा नहीं हुआ है।

पाप के कारण परमेश्वर और उसके वचन पर भरोसा नहीं रहता। उत्पत्ति 3:1-7 सर्प (शैतान; प्रकाशितवाक्य 12:9) उसे धोखे से फंसाने और फिर उसके साथ आदम से पाप करवाने की दुखद कहानी बताती है। पहले तो शैतान ने इस बात से इनकार किया कि परमेश्वर ने आज्ञा तोड़ने और मृत्यु के बारे में उन्हें सच्चाई बताई। उन्हें दो अक्षर के एक शब्द ''नहीं'' जोड़ने से परमेश्वर की सच्चाई से पूरी तरह रोकते हुए उसने कहा, ''तुम निश्चय न मरोगे!'' फिर उसने सुझाव दिया कि परमेश्वर आदम और हव्वा को किसी अद्‌भुत बात यानी भले और बुरे के ज्ञान का आनन्द लेने से रोक रहा है। उसके कहने का अर्थ था कि परमेश्वर को मुकाबले का डर है कि कहीं पुरुष और स्त्री इस ज्ञान को पाकर उसकी तरह बुद्धिमान न बन जाएं।

आयत 6 उनके विनाशक निर्णय को बताती है: ''सो जब स्त्री ने देखा कि उस वृक्ष का फल खाने में अच्छा, और देखने में मनभाऊ, और बुद्धि देने के लिए चाहने योग्य भी है, तब उस ने उस में से तोड़कर खाया ...।'' उसने अपने आप को अपने बनाने वाले में अविश्वास में बहकने दिया, ताकि वह उसकी एक मनाही का उल्लंघन कर सके। पॉल आर. हाउस ने सुझाव दिया कि ''पाप का आरम्भ परमेश्वर से अविश्वास के साथ होता है, जिसमें अपने आपको हानि पहुंचाने वाली चालाकी, सच्चाई के प्रकाशन को नकारना और अन्त में विनाश में समाप्त हो जाना शामिल है।''[1] पुरुष और स्त्री द्वारा परमेश्वर पर अविश्वास करने और इसके बजाय भरमाने वाले की बातों पर भरोसा करते ही, वे अपने सृष्टिकर्त्ता की आज्ञा तोड़ने के दोषी बन गए।

परमेश्वर और मनुष्यजाति के बीच सम्बन्ध न केवल खराब हो गया, बल्कि उत्पत्ति 3:8-13 के अनुसार पुरुष और स्त्री के बीच भी सम्बन्ध बिगड़ गया। अब परमेश्वर की उपस्थिति का स्वागत करने के बजाय यह पहला दम्पत्ति उससे अपने आपको छिपाने लगा। जब उनसे पूछा

गया कि उन्हें कैसे पता चला कि वे नंगे हैं तो आदम ने हव्वा पर दोष लगाया तो परोक्ष रूप से अपने कामों की जिम्मेदारी स्वीकारने के बजाय परमेश्वर पर दोष लगाना था कि ''जिस स्त्री को तू ने मेरे संग रहने को दिया है उसी ने उस वृक्ष का फल मुझे दिया, और मैंने खाया'' (3:12)। अफ़सोस की बात है कि आज भी जो लोग जीवित हैं उनमें से अधिकतर लोग ऐसा ही करते हैं। वे परमेश्वर और एक दूसरे के साथ सम्बन्ध में छिप रहे हैं और दूसरों पर दोष लगा रहे हैं। 11 से 16 आयतें बताती हैं कि अच्छे सम्बन्धों की कमी क्यों है। शांति और एकता के बजाय अब तनाव अधिक स्वभाविक रूप से मिल जाता है। हमें न केवल अपनी जीविका के लिए बल्कि दूसरों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने के लिए भी काम करना पड़ता है। जो ऐसी बात है कि अधिकतर लोग इसे करने से इनकार करते हैं।

सर्प, पुरुष, स्त्री और यहां तक कि सृजित प्रबन्ध के ऊपर ''श्रापों'' की शृंखला हमें याद दिलाती है कि परमेश्वर पाप की जवाबदेही की मांग करता है और वह इसे नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकता। ये ''श्राप'' वास्तव में परमेश्वर की आज्ञा न मानने के असम्भावी परिणामों का वर्णन करते हैं। वह हमें बताना चाहता है कि उसकी आज्ञा तोड़ने के परिणाम *मिलते* ही हैं, चाहे हमें क्षमा कर दिया जाए।

इस कहानी में अच्छी बात यह है कि चाहे हमने पाप किया, पर परमेश्वर ने हमें छोड़ा नहीं है। उत्पत्ति के विवरण में भी यह बात बताई गई है। उत्पत्ति 3:15 में वह बात है जिसे कई बार *प्रोटोइवैंज़लिज़्म* यानी छुटकारा दिलाने वाले के आने के शुभ समाचार की पहली बात कहा गया है। यह अपने मूल संदर्भ में एक धुंधली सी प्रतिज्ञा है, जो बाइबली प्रकाशन के मिलने पर चमकदार होती जाती है। यह आयत कहती है, ''वह तेरे सिर को कुचल डालेगा और तू उसकी एडी को डंसेगा।'' नये नियम के दृष्टिकोण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह यीशु के लिए कहा गया है जिसने शैतान के सिर को कुचलने और उसके कामों को नष्ट करना था, चाहे अस्थाई रूप से उसे अपनी ही जान देनी पड़नी थी।

पाप से भरी अपनी सृष्टि के सम्बन्ध में परमेश्वर की लगातार चिंता के और संकेत हमारे वचन पाठ में देखे जाते हैं। उत्पत्ति 3:21 बताता है कि किस प्रकार परमेश्वर ने ''आदम और उसकी पत्नी के लिए चमड़े के अंगरखे बनाकर उनको पहना दिया।'' यह एक स्नेह भरा दृश्य है। ठुकराए गए सृष्टिकर्त्ता ने, अपनी आज्ञा न मानने वाली संतान को नष्ट करने या उससे मुंह मोड़ने के बजाय उसे अपना नंगेज़ और वह लज्जा जो उन्होंने अपने ऊपर लाई थी, ढकने के लिए स्वयं उनके लिए वस्त्र बनाए। यह अच्छी बातों के आने का अद्‌भुत संकेत है। इसी प्रकार से 22 से 24 आयतें प्रेम के उस कार्य के बारे में बताती हैं जिसे यदि हम ध्यान से न पढ़ें तो नज़रअन्दाज़ कर सकते हैं। परमेश्वर ने आदम और हव्वा को वाटिका से निकाल दिया और जीवन के वृक्ष के मार्ग को रोक दिया ताकि वे इसमें से खाकर सदा तक जीवित न रहें। यदि उन्होंने पाप न किया होता, तो माना जाता है कि वे सदा तक परमेश्वर के साथ एक रहते। विद्रोही और पापी जीवों के रूप में उन्हें सदा तक रहने के लिए उनुमति नहीं दी जा सकती है। हम केवल कल्पना कर सकते हैं कि यदि पैदा होने वाला हर पापी आज भी जीवित होता तो संसार कितनी खतरनाक जगह होती! परमेश्वर इसकी अनुमति नहीं दे सकता, पर उसका काम अभी पूरा नहीं हुआ है। जीवन का वृक्ष आज भी है। इसकी ओर जाने के मार्ग पर ''पहरा लगा'' है पर एक बार फिर उस

तक पहुंचने की अनुमति दी जाएगी (देखें प्रकाशितवाक्य 22:1-5), क्योंकि इस दुखद हानि को यीशु मसीह द्वारा बदल दिया गया है। पाप के बावजूद, सृष्टिकर्त्ता का नियन्त्रण आज भी है और अन्त में पाप विजयी नहीं होता। यह परमेश्वर का संसार है और हम आज भी उसकी सृष्टि हैं। वह हमें यूंही नहीं छोड़ेगा।

सारांश

शेष बाइबल पाप की समस्या के समाधान के बारे में है। उस समाधान को समझने से पहले उन नियमों को समझना आवश्यक है, जो उस समस्या पर प्रकाश डालते हैं। हमें एक भले और प्रेम करने वाले परमेश्वर के द्वारा उसके वचन के भरोसेमंद आज्ञापालन में रहने के लिए बनाया गया है। परन्तु हम ने पाप किया है और इसके बाद स्पष्ट रूप से मृत्यु ही आती है। उत्पत्ति 1-3 पढ़ना बन्द करने पर हमें अपने आपको उद्धारकर्त्ता के लिए तड़पते देखते रहना चाहिए।

टिप्पणी

[1]पॉल आर. हाउस, *ओल्ड टैस्टामेंट थियोलॉजी* (डाउनर्स ग्रोव, इलिनॉय: इंटर वर्सिटी प्रैस, 1998), 64-65.

"अपने स्वरुप पर?"

उत्पत्ति 1:26 में बहुवचन सर्वनामों ("हम" और "अपने") के इस्तेमाल पर बहु चर्चा होती है। इनका क्या अर्थ हो सकता है? परमेश्वर केवल एक ही है और अभी तक उसने किसी और को बनाया नहीं था, तो वह किससे बात कर रहा था? एक सुझाव यह है कि वह स्वर्गदूतों के साथ बात कर रहा था, जिन्हें मनुष्यों से पहले बनाया गया हो सकता है, परन्तु बाइबल ऐसा नहीं कहती।

एक और सम्भावना यह है कि यह "महिमामय के बहुवचन" का उदाहरण ही है जिसमें बोलने वाला अपने आपको बहुवचन में बताता है चाहे वास्तव में इसका अर्थ 'मैं' ही है। शायद मसीही लोगों में सबसे प्रसिद्ध व्याख्या यह है कि यह आयत इस तथ्य को दर्शाती है कि परमेश्वर पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के तीन व्यक्तित्वों में वास करता है और यह सर्वनाम तीनों में होने वाली किसी "बातचीत" का संकेत देती है। (उत्पत्ति 1:2 सृष्टि में पवित्र आत्मा की भूमिका के साथ साथ उन बातों को देखते हैं कि मसीह यूहन्ना 1:3, 10 और इब्रानियों 1:2 में सृष्टि बनाने में शामिल था।) यह परमेश्वर के तीहरे स्वभाव के नये नियम के बाद के संकेतों से मेल खाता है।